अंदानुर कलम्मा और अन्य

बनाम

गंगम्मा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से

मार्च 06, 2018

[मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा, ए0 एम0 खानविलकर और डॉ0 डी0 वाई0 चंद्रचूड़, न्यायमूर्तिगण]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

धारा 11–प्रांग न्याय–प्रश्नगत संपत्ति की नीलामी की प्रत्यर्थियों के पक्ष में पुष्टि की गयी– अपीलार्थीयों द्वारा एक रिट याचिका में चुनौती दी गयी– उच्च न्यायालय द्वारा याचिका खारिज की गई, हालांकि यह विनिश्चित किया गया कि उपायुक्त धारा 177 मैसूर भू–राजस्व संहिता के अंतर्गत अपनी स्वप्रेरणा की शक्ति का उपयोग करते हुए नीलामी को अपास्त कर सकता है–रिट अपील में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय द्वारा उपायुक्त को विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए निर्देशित किया जा सकता था–तत्पश्चात अपीलार्थियों द्वारा उपायुक्त के नीलामी को अपास्त करने बाबत् विवेकाधिकार का प्रयोग करने संबंधी आवेदन के संबंध में प्रस्तुत पुनरीक्षण को अन्य रिट याचिका की विषय–वस्तु बनाया गया धारा 177 के अंतर्गत आवेदन के प्रचलनशीलता के विवाद्यक को नकारा गया तथा रिट अपील में उसकी पुनः पुष्टि की गई–इसके पश्चात वाद भूमि के स्वामित्व तथा आधिपत्य की घोषणा के लिए प्रस्तुत वाद को क्राम न्याय के सिद्धांतों के आधार पर विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा अपील को निरस्त किया गया–अपील में यह अभिनिर्धारित किया गया कि नीलामी की पुष्टि के संबंध में संपूर्ण विवाद्यक समान पक्षकारों के मध्य समान भूमि तथा समान वाद कारण के बीच की विषय–वस्तु है– अतः प्रांग न्याय के सिद्धांतों के विपरीत होने से अपीलार्थियों के विरूद्ध वाद न किये जाने को सही ठहराया गया– प्रांग न्याय के सिद्धांत।

न्यायालय द्वारा अपील को निरस्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 11 व्य.प्र.सं. के अंतर्गत उपबंधित प्रांग न्याय का सिद्धांत "Nemo Debet Bis Vexari Pro Una Et Eadem Causa". की सुक्ति पर आधारित है। वर्तमान मामले में प्रत्यर्थियों के पूर्ववर्तीयों के पक्ष में की गयी नीलामी तथा विक्रय प्रमाण पत्र की पुष्टि से संबंधित संपूर्ण विवाद उच्च न्यायालय के समक्ष की विषय वस्तु उन्हीं पक्षकारों के मध्य उसी भूमि तथा उसी वाद कारण से संबंधित थी। इस प्रकार विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा स्वामित्व एवं आधिपत्य की घोषणा हेतु प्रस्तुत वाद को प्रांग न्याय के सिद्धांतों के विपरीत होने से अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत वाद को खारिज कर सही किया। यह सिद्धांत वर्तमान चारों मामलों पर लागू होता है।

नागभूषणम्मल बनाम सी. चंडिकेश्वरलिंगम

(2016) 4 एस. सी. सी. 434–पर निर्भर।

शिर्लाकोप्पा नगर पालिका बनाम श्री शारदा राइस मिल और अन्य 1982 (1) के. एल. जे. 137; यू. निलन बनाम एलआर के माध्यम से कन्नय्यन। ए.आई.आर 1999 एस. सी. 3750; राज्य बैंक ऑफ त्रावणकोर बनाम मैथिन कन्नू मस्तान कंजू ए.आई.आर 1980 केरल 236; माधवी अम्मा भवानी अम्मा और अन्य बनाम कुंजीकुट्टी पिल्लई मीनाक्षी पिल्लइ आैर अन्य 2000 ए.आई.आर एससीडब्ल्यू 2432; पुनः: आगे बढ़ें।

( ), अंधेरी और अन्य ए.आई.आर 1986 एस. सी. 391 अशोक कुमार श्रीवास्तव बनाम राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड ए.आई.आर

1998 एससी 2046 और पुनः: गुलाबचंद चोटालाल पारिख बनाम गुजरात राज्य ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1153–निर्दिष्ट।

संदर्भित न्यायदृष्टांत

1982(1) केएलजे 137	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
ए. आई. आर 1999 एस. सी.3750	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
ए. आई. आर 1980 केरल 236	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
2000 ए.आइ.आर एससीडब्ल्यू 2432	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
ए.आइ.आर 1986 एससी 391	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
ए.आइ.आर 1998 एससी 2046	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
ए.आइ.आर 1965 एससी 1153	संदर्भित किया गया है	पैरा 19
(2016) 4 एससीसी 434	संदर्भित किया गया है	पैरा 28

व्यवहार अपील क्षेत्राधिकार: कर्नाटक उच्च न्यायालय के आर.एफ.ए. क्रमांक 410/1998 तथा आर.पी. क्रमांक 124/2005 क्रमशः के निर्णय एवं आदेश दिनांक 04.01.2005 तथा 11.03.2005 से उदभुत व्यवहार अपील क्रमांक 423–424/2018

काशी विश्वेश्वर, सुश्री ए.सुमथि अधिवक्ता, अपीलार्थियों के लिए

ई.सी. विद्यासागर, अधिवक्ता, प्रत्यर्थियों के लिए

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए.एम. खानबिलकर द्वारा सुनाया गया

1. यह विशेष अनुमति अपीलें, कर्नाटक उच्च न्यायालय के आर.एफ.ए. क्रमांक 410/1998 तथा आर.पी. क्रमांक 124/2005 क्रमशः विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 04.01.2005 तथा 11.03.2005 के विरूद्ध प्रस्तुत की गई है। जिसमें विद्वान एकल न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा डिक्री की पुष्टि करते हुए अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत वाद को प्रांग न्याय के आधार पर निरस्त किया तथा पुनर्विलोकन याचिका को भी निरस्त किया।
2. वर्तमान अपील में अपीलार्थी वादीगण है तथा उत्तरवादी मूल वाद में प्रतिवादीगण है।
3. संक्षेप में अपीलकर्ता क्र.1 स्वर्गीय श्री अंडानूर उमापतियप्पा की पत्नि है तथा अन्य अपीलकर्ता उनके बेटे एवं बेटी है। उत्तरवादी क्रमांक 1 स्वर्गीय श्री बेलाकेरप्पा की पत्नि है तथा अन्य उत्तरवादीगण उनके बेटे व बेटी है।

4– स्वर्गीय श्री अंदनूर उमापतियप्पा (स्वर्गीय अंदनूर कोटरप्पा) के पिता आयकर अधिनियम के प्रावधानों के तहत 2,600/– रुपये के दोषी थे। बकाया कर की वसूली के लिए, आयकर विभाग ने कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 (संक्षेप में, "अधिनियम") की धारा 158 के तहत मामले को चित्रदुर्ग के उपायुक्त को भेजा था। स्वर्गीय श्री अंडानूर उमापतियप्पा की भूमि दावणगेरे तालुक के बिसलेरी गांव की संख्या 63, जिसकी माप 23 एकड़ और 15 गुंटा है, को बकाया कर की वसूली के लिए विक्रय किया गया था। विक्रय 7 जनवरी, 1966 को हुआ था और उत्तरदाताओं के पिता श्री स्वर्गीय बेलेकरप्पा 2,600/– रुपये में सबसे अधिक बोली लगाने वाले थे और नीलामी बिक्री का संचालन करने वाले सहायक आयुक्त ने विक्रय की पुष्टि के लिए उपायुक्त चित्रदुर्ग को सिफारिश की थी।

5– अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती ने बिक्री को रद्द करने के लिए 3.2.1966 को एक आवेदन प्रस्तुत किया था। हालाँकि, डिप्टी कमिश्नर ने 3 मई, 1966 के आदेश द्वारा बिक्री की पुष्टि की। परिणामस्वरूप, जून, 1966 में स्वर्गीय श्री बेलेकरप्पा के पक्ष में एक बिक्री प्रमाणपत्र जारी किया गया और उन्हें वाद अनुसूची की संपत्ति का कब्ज़ा भी दे दिया गया।

6– अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती स्वर्गीय श्री अंदानूर उमापतियप्पा पुत्र स्वर्गीय अंदानूर कोटरप्पा ने मैसूर भूमि राजस्व अधिनियम, 1964. की धारा 49 के तहत अपील संख्या 486/1967 (एलआर) दायर करके मैसूर अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष 3 मई, 1966 के आदेश को प्रश्नगत किया । उन्होंने दावा किया कि 3 फरवरी, 1966 की बिक्री को रद्द करने के उनके आवेदन पर निर्णय किए बिना, उपायुक्त द्वारा नीलामी बिक्री की पुष्टि करने के लिए अंतिम आदेश पारित करना उचित नहीं था। अधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 27 सितंबर, 1967 द्वारा अपील की अनुमति दी और बिक्री को इस आधार पर रद्द कर दिया कि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 की धारा 177 के तहत, उपायुक्त बिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन के बाद ही बिक्री की पुष्टि कर सकता है। तदनुसार, अधिकरण ने बिक्री को रद्द करने के बाद, अपीलकर्ता द्वारा 3 फरवरी, 1966 को अपने आवेदन में लगाए गए आरोपों की नए सिरे से जांच करने और विधि के अनुसार इसका निराकरण करने के लिए मामले को चित्रदुर्ग के उपायुक्त को भेज दिया।

7– पारित रिमांड आदेश के अनुसार, अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती द्वारा दायर याचिका को 8 जून, 1969 को उपायुक्त द्वारा सुनवाई के लिए लिया गया था और चूंकि कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए उपायुक्त ने अभियोजन पक्ष के अभाव के कारण इसे खारिज कर दिया। उक्त आवेदन को पुनर्स्थापित करने के लिए दायर पुनर्स्थापना आवेदन को भी उपायुक्त द्वारा खारिज कर दिया गया.

8– अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती द्वारा डिप्टी कमिश्नर द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपील संख्या 167/1971 के तहत अपील दायर करके मामले को मैसूर राजस्व अपीलीय न्यायाधिकरण में ले जाया। इसे भी 13 अप्रैल, 1971 के एक आदेश द्वारा कालबाधित मानकर खारिज कर दिया गया। उपरोक्त आदेश के पुनर्विलोकन के लिए दायर एक पुनर्विलोकन याचिका को भी अधिकरण ने खारिज कर दिया था।

9– अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष व्यथित होकर एक रिट याचिका डब्ल्यू.पी.क्रमांक 1810/1971 दायर की। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने 23 अक्टूबर, 1973 के अपने आदेश द्वारा रिट याचिका को खारिज करते हुए कहा कि यदि किसी कारण से उपायुक्त चित्रदुर्ग ने अधिकरण द्वारा अपील क्रमांक 486/1967 (एलआर) में पारित आदेश के बाद भी बिक्री की पुष्टि अब तक नहीं कीऔर यदि रिट याचिकाकर्ता (अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती) ने बिक्री राशि जमा की थी, तब उपायुक्त मैसूर भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के प्रावधान के अनुसार बिक्री को रद्द करने के लिए अपनी स्वप्रेरणा शक्ति का प्रयोग कर सकता था।

10– याचिका में उत्तरदाताओं ने रिट याचिका को खारिज करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा जारी की गई कुछ टिप्पणियों और निर्देशों से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील डब्लू.ए.क्रमांक 152/1973 दायर करके उस निर्णय को चुनौती दी। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अधिनियम की धारा 177 के प्रावधानों का उल्लेख करने के बाद पाया कि रिट याचिका खारिज होने के मद्देनजर, बिक्री को रद्द करने के लिए कोई आवेदन लंबित नहीं था। फिर भी, चूँकि उपायुक्त को बिक्री को रद्द करने का विवेकाधिकार दिया गया था, वह ऐसी शर्तों पर, जो वह उचित समझे, गुण–दोष के आधार पर और विधि के अनुसार ऐसा कर सकता था। खंडपीठ ने यह भी कहा कि याचिका को खारिज करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश रिट कार्यवाही में कोई और टिप्पणी नहीं कर सकते थे या कोई निर्देश जारी नहीं कर सकते थे। उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 7 जनवरी, 1975 द्वारा अपील स्वीकार की।

11– रिट अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती ने अधिनियम की धारा 177 के तहत 24 नवंबर, 1973 को उपायुक्त के समक्ष एक आवेदन दिया था, जिसमें अन्य बातों के साथ–साथ 7 जनवरी, 1966 को आयोजित नीलामी बिक्री को रद्द करने का अनुरोध किया गया था। जैसा कि मैसूर भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के प्रावधान में परिकल्पित है। प्रथमतः 9 जून, 1975 को दिए

गए एक आदेश द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया था और उक्त आदेश के पुनर्विलोकन के लिए दायर एक आवेदन पर, उपायुक्त ने 29 सितंबर, 1975 को एक आदेश पारित किया, जिसमें कहा गया कि पुनर्विलोकन याचिका सुनवाई योग्य थी।

12– उपायुक्त के पूर्वोक्त आदेश से व्यथित उत्तरदाताओं ने अन्य बातों के अलावा, कर्नाटक अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका क्रमांक 304/1973 दायर की, जिसमें इस आधार पर उक्त आदेश पर सवाल उठाया गया कि उपायुक्त के पास अधिनियम की धारा 177 के अंतर्गत किसी दोषी द्वारा दायर आवेदन पर अपनी स्वप्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। अधिकरण ने प्रारंभ् में अपने आदेश दिनांक 4 अगस्त, 1978 द्वारा याचिका को स्वीकार किया और अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनर्विलोकन याचिका क्रमांक 27/1978 पेश किये जाने पर पुनर्विलोकन याचिका स्वीकार की और पुनरीक्षण याचिका क्रमांक 304/1973 में पारित आदेश को रद्द कर दिया। इसके अलावा, 24 मार्च, 1980 के आदेश के तहत, ट्रिब्यूनल ने निर्देश दिया कि पुनरीक्षण याचिका को गुण–दोष के आधार पर नए सिरे से सुनवाई के लिए रखा जाए, और पश्चातवर्ती आदेश दिनांक 30 जनवरी, 1981 द्वारा उत्तरदाताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया।

13– इसके बाद प्रतिवादियों ने उच्च न्यायालय संख्या 14012/1981 के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के अलावा, पुनरीक्षण याचिका क्रमांक 304/1973 दिनांक 4.8.1978, 24.3.1980 और 30.1.1981 में अधिकरण द्वारा पारित आदेशों पर सवाल उठाया गया। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने आदेश दिनांक 31 जुलाई, 1989 द्वारा पुनरीक्षण याचिका में अधिकरण द्वारा पारित उपरोक्त आदेशों को रद्द कर दिया और टिप्पणी की कि नीलामी बिक्री की पुष्टि बहुत पहले ही कर दी गई थी।

14– व्यथित महसूस करते हुए, अपीलकर्ताओं ने एक रिट अपील क्रमांक 2176/1989 दायर की। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपने आदेश दिनांक 8 दिसंबर, 1989 द्वारा अपील को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए मत में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

15– इसके बाद, अपीलकर्ताओं ने विद्वान सिविल जज (सीनियर डिवीजन), दावणगेरे के समक्ष, यह घोषित करने की प्रार्थना के साथ कि वे वाद अनुसूची संपत्ति के मालिक हैं और साथ ही उत्तरदाताओं को संपत्ति का कब्जा फिर से देने का निर्देश देने के लिए एक वाद क्रमांक 27/1990 दायर किया। उपायुक्त, कर्नाटक राजस्व अपीलीय अधिकरण और उच्च न्यायालय के समक्ष पहले की कार्यवाही का उल्लेख करने के बाद, अपीलकर्ताओं ने दावा किया कि मैसूर अपीलीय अधिकरण द्वारा अपील क्रमांक 486/1967 (एलआर) में अपील के निराकरण के बाद, जिसमें उपायुक्त, चित्रदुर्ग द्वारा बिक्री की पुष्टि को रद्द कर दिया गया और मामले को विधि के अनुसार नए सिरे से निराकरण के लिए उपायुक्त को वापस भेज दिया गया, बिक्री की पुष्टि के लिए और बिक्री प्रमाण पत्र जारी करने के लिए उपायुक्त चित्रदुर्ग द्वारा मामले की सुनवा◌ंई दिनांक तक कोई कदम नहीं उठाया गया है, इसलिए राजस्व अधिकारियों और अधिकरण के समक्ष विभिन्न कार्यवाहियों में पारित विभिन्न आदेश, वाद अनुसूची संपत्ति के संबंध में किसी भी तरह से अपीलकर्ताओं के अधिकार, स्वत्व और हित को प्रभावित नहीं करेंगे और न ही कर सकते हैं। इसलिए, अपीलकर्ताओं ने दावा किया कि वे वाद अनुसूची संपत्ति के मालिक हैं। अपीलकर्ता यह भी दावा करते हैं कि उनके पूर्ववर्ती ने, विभिन्न न्यायालयों के समक्ष विभिन्न कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान आयकर विभाग को देय पूरी राशि जमा कर दी थी और इसलिए, आयकर बकाया की प्राप्ति के बाद बिक्री की पुष्टि का सवाल ही नहीं उठता। अपीलकर्ता आगे यह दावा करते हैं कि हालांकि उत्तरवादियों द्वारा उपायुक्त द्वारा जारी बिक्री प्रमाण पत्र की आड़ में वाद अनुसूची संपत्ति पर कब्जा कर लिया गया था और चूंकि अपील संख्या 486/1967 (एलआर) में अधिकरण द्वारा इसे रद्द कर दिया गया था। , उनका कब्ज़ा मुकदमें के अधीन कब्ज़ा है और इससे उन्हें वाद

अनुसूची संपत्ति पर कब्ज़ा जारी रखने का कोई अधिकार नहीं मिलेगा। मुकदमे में उनका आगे का दावा है कि हालांकि अपीलकर्ताओं ने उत्तरदाताओं से वाद अनुसूची संपत्ति का कब्ज़ा सौंपने की मांग की, लेकिन उत्तरदाताओं ने ऐसा करने से इनकार कर दिया और इसलिए, अपीलकर्ता घोषणा और कब्जे के लिए मुकदमा दायर करने के लिए बाध्य थे। अपीलकर्ताओं के अनुसार, वाद दायर करने का वाद कारण 1 मई, 1990 को या उसके आसपास और जुलाई, 1989 में भी उत्पन्न हुआ, जब उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं की रिट अपील क्रमांक 2176/1989 को खारिज कर दिया।

16– उत्तरदाताओं ने मुकदमे का विरोध किया। उनके अनुसार डब्ल्यू.पी. में कार्यवाही एवं पारित आदेश के दृष्टिगत. क्रमांक 14012/1981 दिनांक 31 जुलाई 1989, उपायुक्त के समक्ष और राजस्व अधिकारियों के समक्ष कार्यवाही के संबंध में वादपत्र में दिए गए कथनों का कोई परिणाम नहीं है और उन आदेशों के आधार पर, पार्टियों को मूल स्थिति में बहाल कर दिया गया है 3 मई, 1966 को यानी उपायुक्त द्वारा बिक्री प्रमाणपत्र की पुष्टि की तारीख, और नया बिक्री प्रमाणपत्र देने की कोई आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त बचाव के अलावा, विचारण न्यायालय के समक्ष दायर जवाबदावा में उत्तरदाताओं द्वारा कोई अन्य बचाव नहीं लिया गया है।

17– मुकदमे के पक्षकारों की दलीलों के आधार पर विचारण न्यायालय ने विचार हेतु छः मुद्दे तय किए, जो इस प्रकार हैं: –

"(i) क्या वादी साबित करते हैं कि वे वाद संपित्त के मालिक होकर कब्जे के हकदार हैं?
(ii) क्या वे आगे साबित करते हैं कि वे वाद संपत्ति पर कब्ज़ा करने के हकदार हैं?
(iii) क्या वादी का मुकदमा धारा 11 व्य.प्र.सं. द्वारा प्रभावित है जैसा कि जवाबदावा में तर्क दिया गया है?
(iv) क्या प्रतिवादी क्षतिपूर्ति व्यय प्राप्त करने के अधिकारी हैं?
(v) क्या वादी प्रार्थना किये गये अनुतोषों को प्राप्त करने के अधिकारी हैं?
(vi) कौन सा आदेश या आज्ञप्ति? "

18– विचारण न्यायालय ने रिट याचिका क्रमांक 14012/1981 और रिट अपील क्रमांक 2176/1989 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए माना है कि 3 जून 1966 की नीलामी बिक्री को चुनौती देने वाले मुकदमे में चाहा गया अनुतोष, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 से प्रभावित है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, विचारण न्यायालय ने राजस्व अधिकारियों और उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती द्वारा शुरू की गई विभिन्न कार्यवाहियों के इतिहास का पता लगाया और फिर देखा कि डब्ल्यू.पी. क्रमांक 14012/1981, में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के मद्देनजर। मुकदमा पूर्व न्याय के सिद्धांतों से प्रभावित है।

19– विद्वान सिविल जज (सीनियर डिवीजन) द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित महसूस करते हुए, अपीलकर्ताओं ने बैंगलोर में कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष नियमित प्रथम अपील क्रमांक 410/1998 दायर की। रिट याचिका क्रमांक 14012/1981 में 31 जुलाई 1989 के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट अपील को खारिज करने के साथ समाप्त हुईं सभी कार्यवाहियों पर, जिनमें राजस्व प्राधिकरणों द्वारा पारित आदेशों की शुद्धता जिसमें कर्नाटक अपीलीय न्यायाधिकरण का विश्लेषण भी सम्मिलित है पर उच्च न्यायालय द्वारा ध्यान दिया गया तथानीलामी बिक्री को रद्द करने के लिए अपीलकर्ताओं के आवेदन दिनांक 24 नवंबर, 1973 और 9 जून, 1975 पर आधारित उनकी नीलामी बिक्री को अपास्त करने हेतु अपील जिसे अस्वीकार कर दिया गया और जिस निर्णय की पुष्टि उच्च् न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अपीलार्थीगण द्वारा दायर रिट अपील को निरस्त करते हुए की गयी। उच्च न्यायालय ने शिर्लाकोप्पा टाउन नगर पालिका बनाम श्री शारदा राइस मिल एवं अन्य, यू. नीलान बनाम एलआर के माध्यम से कन्नैयन, स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर बनाम माइथेन कन्नू मस्तान कंजू, माधवी अम्मा भवानी अम्मा और अन्य बनाम कुंजिकुट्टी पिल्लई मीनाक्षी पिल्लई और अन्य, रिः फॉरवर्ड कंस्ट्रक्शन कंपनी और अन्य बनाम प्रभात मंडल

(पंजीकृत), अंधेरी और अन्य, अशोक कुमार श्रीवास्तव बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और रिः गुलाबचंद छोटेलाल पारिख बनाम गुजरात राज्य के प्रकरणों के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए प्रांग न्याय के सिद्धांत के पक्षकारों के पहचान के, वाद कारण तथा विषय–वस्तु के ट्रिपल परीक्षण आवश्यकता के संबंध में प्रांग न्याय के सिद्धांत पर विधिक स्थिति का सारांश दिया। दूसरे शब्दों में, कोई भी विवाद्यक जो उठाया गया है और निर्णित किया गया है और जो गुण–दोष के आधार पर अंतिम निर्णय द्वारा पक्षकारों के अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करने के लिए आवश्यक था, उन विवाद्यकों पर उन्हीं पक्षकारों द्वारा दोबारा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है और एक पक्षकार पूर्व में निर्णित विवाद्यक तथा जिस विवाद्यक को पूर्व की कार्यवाही में लाया जा सकता था तथा लाया जाना चाहिए था परंतु नहीं लाया गया के संबंध में भी पुनः मामला प्रस्तुत करने से वर्जित है।

उन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया:

"31. मैंने अपने आदेश के पहले पैराग्राफ में जिस ट्रिपल पहचान का उल्लेख किया है, वह उन मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण है जिन्हें मैंने अपने विचार के लिए उठाया है। पुनरावृत्ति की कीमत पर, मैं एक बार फिर से निर्णय के सिद्धांत को लागू करने के लिए ट्रिपल आवश्यकता पर ध्यान देना चाहता हूं। वे हैं, पक्षकारों की पहचान, कार्रवाई का कारण और विषय वस्तु। पक्षकारों की पहचान विवाद में नहीं है और न ही वादी द्वारा इस पर विवाद किया जा सकता है। वास्तव में, उनके पिता विभिन्न न्यायालयों में नीलामी बिक्री और इसकी पुष्टि के लिए आंदोलन कर रहे थे और उनकी मृत्यु के बाद, वादी ने इस चरण तक कार्यवाही जारी रखने के लिए उनके शो में कदम रखा है। दूसरी आवश्यकता वाद कारण है। वाद कारण में वे सभी तथ्य और परिस्थितियाँ शामिल होती हैं जो अनुतोष देने के लिए आवश्यक हो। राजस्व अधिकारियों, अधिकरण के समक्ष वादी की प्राथमिक शिकायत उपायुक्त द्वारा सार्वजनिक नीलामी में उनकी अचल संपत्ति की बिक्री की पुष्टि और वाद अनुसूची संपत्ति से उनकी अवैध बेदखली थी। सभी न्यायालयों के समक्ष, वादी अपना प्रकरण हार चुके हैं और अन्य की प्रस्तुत की गयी रिट याचिका एवं रिट अपील में इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है। इस प्रकार, राजस्व अधिकारियों द्वारा पारित आदेश अंतिम हो गए हैं, इस अर्थ में, एक सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा अचल संपत्ति की नीलामी और उसी के कब्जे परिदान में किसी भी राजस्व प्राधिकरण या न्यायाधिकरण या इस न्यायालय द्वारा व्यवधान उत्पन्न नहीं किया गया है। हालाँकि अपील क्रमांक 486/1967 में मैसूर राजस्व न्यायाधिकरण द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसार न्यायाधिकरण द्वारा इसकी पुष्टि भी नहीं की गई है। तीसरा, सभी कार्यवाहियों में विषय वस्तु एक ही है, अर्थात् क्रमांक 63, जिसकी माप 23 एकड़ और 15 गुंटा है, जो दावणगेरे जिले के बिसलेरी गांव में स्थित वाद अनुसूची संपत्ति है। 32. इन कार्यवाहियों में प्रांग न्याय का सिद्धांत लागू होगा, क्योंकि पहले मुकदमे में दावा एक ही पक्ष के बीच था, वाद कारण और विषय वस्तु भी एक ही या एक समान थी और एक सक्षम न्यायालय द्वारा दी गयी न्यायिक घोषणा से प्रतिवादियों के कब्जे में व्यवधान नहीं किया है। इसलिए, वादी पक्ष को उस मुद्दे पर दोबारा मुकदमा करने से रोका जाता है जिस पर पहले ही फैसला हो चुका है। अन्यथा भी, वादी के पिता या कम से कम वादी पहले की कार्यवाही में वाद अनुसूची संपत्ति पर कब्जे के लिए एक विवाद्यक सामने ला सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं करने का फैसला किया और इसलिए बाद में इस विवाद्यक को फिर से नहीं उठा सकते, जो वे कर सकते थे इसलिए, मेरे विचार में, विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आज्ञप्ति को इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका क्रमांक 14012/1989 निराकरण दिनांक 31.07.1989 में यह ठहराया जाने से कि कर्नाटक अपीलीय अधिकरण द्वारा विक्रय की पुष्टि संबंधी मामले को अपास्त करते हुए प्रत्यावर्ती किया गया है। भले ही, इस आधार पर नहीं परंतु प्रांग न्याय के सिद्धांतों पर कायम रखने की आवश्यकता है। इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों में तथ्यों की स्पष्ट त्रुटि है और पक्षकारों के बीच मामला तय करते समय विचारण न्यायालय द्वारा इस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता था और मेरी राय में, पक्षकारों के

मध्य प्रकरण का निराकरण करते समय तथ्यों संबंधी त्रुटि होने के कारण इसे नजरअंदाज किया जा सकता था। " (जोर दिया गया)

20– उच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने पर, अपीलकर्ताओं द्वारा की गई पहली अपील को खारिज कर दिया। अपीलकर्ताओं ने अन्य बातों के साथ–साथ विशेष अनुमति के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है कि मैसूर राजस्व अपीलीय न्यायाधिकरण के दिनांक 27 सितंबर, 1967 के फैसले के मद्देनजर नीलामी बिक्री की पुष्टि के संबंध में मुद्दा फिर से आरंभ किया गया था। बिक्री की पुष्टि और उत्तरवादियों को पुनः विक्रय प्रमाण पत्र जारी न किये जाने के अभाव में, उत्तरदाताओं के पक्ष में वाद अनुसूची संपत्ति पर कोई अधिकार, शीर्षक या हित या कुछ भी नहीं बनाया जा सकता है। यह तथ्य कि उत्तरदाताओं के पूर्वज स्वर्गीय बालाकेरप्पा को 3 मई, 1966 को बिक्री प्रमाण पत्र और बिक्री की पुष्टि के आधार पर वाद अनुसूची संपत्ति के कब्जे में रखा गया था, किसी भी तरह से अपीलकर्ताओं के हित को नुकसान नहीं पहुंचाएगा और न ही उन्हें आगे बढ़ने से वंचित करेगा तथा जहां अपीलार्थीगण के पास स्वामित्व है उनके वाद संपत्ति के कब्जे को पुनः प्राप्त करने के अनुतोष से वंचित करेगा। अपीलकर्ताओं के अनुसार, उच्च न्यायालय के साथ–साथ विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं का वाद प्रांग न्याय के सिद्धांत के आधार पर न चलने देकर तथा उनके आधिपत्य के आधार पर हक तथा वाद संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा के वाद को निरस्त कर स्पष्ट त्रुटि की है।

21– दूसरी ओर, उत्तरदाताओं का तर्क है कि विचारण न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए मुकदमे को उचित रूप से खारिज कर दिया था क्योंकि यह प्रांग न्याय के सिद्धांतों से प्रभावित था। उत्तरदाता ने इस संबंध में विचारण न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालय द्वारा किए गए विश्लेषण और निष्कर्ष का समर्थन किया है। उन्होंने अपील को गुणहीन होने के कारण खारिज करने की प्रार्थना की।

22– हमने अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री काशी विश्वेशर और उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री ई.सी. विद्या सागर को सुना है।

23– विचारण न्यायालय द्वारा देखा गया तथ्यात्मक मैट्रिक्स और आक्षेपित फैसले में उच्च न्यायालय द्वारा दोहराया गया तथ्यात्मक मैट्रिक्स निर्विवाद है। उसमें, अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती ने कर का भुगतान करने में चूक की थी, जिसके लिए मुकदमे की संपत्ति को नीलामी में रखा गया था, जिसमें उत्तरदाताओं के पूर्ववर्ती ने सबसे अधिक बोली लगाई थी। नीलामी बिक्री की पुष्टि सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई थी। अपीलार्थीगण के पूर्ववर्ती द्वारा बिक्री की पुष्टि की शुद्धता को बिक्री को अपास्त करने के आवेदन के निराकरण के बिना ही प्रश्नगत किया गया था। मामला अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती अंडानूर उमापतियप्पा द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 1810/1971 के माध्यम से उच्च न्यायालय तक पहुंच गया था, जिसे इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया था कि यदि रिट याचिकाकर्ता बिक्री राशि जमा करने के लिए तैयार था, तो उपायुक्त मैसूर भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के प्रावधानों के अनुसार उक्त बिक्री को रद्द करने के लिए अपनी स्वप्रेरणा शक्ति का प्रयोग कर सकता है। हालाँकि, इस टिप्पणी का उत्तरदाताओं ने खंडपीठ के समक्ष रिट अपील संख्या 152/1973 के माध्यम से विरोध किया था। खंडपीठ ने उक्त अपील को स्वीकार कर लिया। 7 जनवरी 1975 को खंडपीठ द्वारा पारित आदेश का प्रासंगिक उद्धरण, जो कि इस मामले के विवाद्यक से संबंधित है, इस प्रकार है: ***"रिट*** *याचिका खारिज होने का नतीजा यह है कि अब बिक्री को रद्द करने के लिए कोई आवेदन लंबित नहीं है। हालाँकि, प्रावधान के तहत, उपायुक्त के पास ऐसी शर्तों के अधीन बिक्री को रद्द करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने की शक्ति है, जिसे वह उचित समझे, इस तथ्य के बावजूद कि बिक्री को रद्द करने के लिए किया गया आवेदन खारिज कर दिया गया है। क्या यह बिक्री को रद्द करने का मामला है और किन शर्तों पर बिक्री को रद्द किया जाना चाहिए, ये मामले उपायुक्त के विशेष विवेक के अंतर्गत*

हैं। यदि इस न्यायालय द्वारा लगाई गई शर्तें पूरी होती हैं, तो यह न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, उपायुक्त को विवेक का प्रयोग करने का निर्देश नहीं दे सकता है। कोई भी शर्त लगाना इस न्यायालय का काम नहीं है। उस मामले को मुक्त छोड़ देना चाहिए था. इसलिए, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि रिट याचिका को बिना किसी टिप्पणी के खारिज कर दिया जाना चाहिए था कि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के प्रावधानों के तहत विवेक का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए। कोई परिव्यय नहीं।" (जोर दिया गया) इस निर्णय के साथ, अपीलकर्ताओं के खिलाफ नीलामी बिक्री की वैधता के मुद्दे को अंतिम रूप मिल गया।

24. मामला यहीं शांत नहीं हुआ क्योंकि नीलामी को रद्द करने के लिए उपायुक्त के विवेक का इस्तेमाल करने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा दायर आवेदन के संबंध में उत्तरदाताओं के साथ–साथ अपीलकर्ताओं द्वारा दायर की गई पुनरीक्षण याचिका को फिर उत्तरदाताओं द्वारा दायर की गई दूसरी रिट याचिका क्रमांक 14012/1981 का विषय बना दिया गया। बेंगलुरु में कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने 31 जुलाई, 1989 के फैसले द्वारा राजस्व अधिकारियों और अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेशों की वैधता पर विचार किया, विशेष रूप से, 4 अगस्त, 1978, 24 मार्च, 1980 के आदेश और 31 जनवरी, 1981। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित 31 जुलाई, 1989 का आदेश, हमारी राय में, हमारे विचार के लिए उठने वाले विवाद्यक का उत्तर देने के लिए महत्वपूर्ण है। 31 जुलाई 1989 का आदेश इस प्रकार है:

"आदेश

यह रिट याचिका वर्ष 1981 की है। मुझे आशा है कि इसका निपटारा करके मैंने उस विवाद को शांत कर दिया होगा जो वर्ष 1966 में उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है जब पूर्ववर्ती अंडानुर उमापतियप्पा ने प्रतिवादियों के हित में आयकर बकाया के भुगतान में चूक के कारण 26 एकड़ जमीन खो दी थी, जिस राशि की वसूली के लिए भूमि सार्वजनिक नीलामी द्वारा बेची गई थी और प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी द्वारा खरीदी गई थी, जिसे तुरंत कब्जे में भी ले लिया गया था।

2. यह सामान्य आधार है कि नीलामी बिक्री की तारीख से ही जमीनें याचिकाकर्ता के कब्जे में हैं और उत्तरदाताओं द्वारा आकर्षक जीवन के कारण इसे याचिकाकर्ता से छीनने के लिए किए गए कई प्रयासों के बावजूद वे ज़मीनों के ऊपर अपनी हिस्सेदारी बनाए रखने में कामयाब रहे।

3. इन जमीनों की वापसी के लिए इस आखिरी लड़ाई में उठाया गया मुद्दा कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के तहत अपनी स्वप्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उपायुक्त को स्थानांतरित करके नीलामी बिक्री को रद्द करने के लिए किए गए एक आवेदन की प्रचलनशीलता का है, हालाँकि नीलामी बिक्री की पुष्टि बहुत पहले ही की जा चुकी है। उपायुक्त द्वारा दिनांक 9.6.75 को निराकृत आवेदन को किन्हीं कारणों से उन्होंने खारिज कर दिया. लेकिन उत्तरदाताओं ने 17.06.1975 को उपायुक्त को एक और आवेदन दायर कर पहले के आदेश की पुनर्विलोकन की मांग की। उपायुक्त द्वारा याचिकाकर्ता के विरोध के बावजूद आवेदन को प्रचलन योग्य ठहराया गया उक्त आदेश से कर्नाटक अपीलय अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत पुनरीक्षण याचिका द्वारा उपायुक्त के आदेश को प्रथमतः सही ठहराया गया, लेकिन बाद में एक पुनर्विलोकन याचिका और पुनरीक्षण याचिका को निरस्त करने का अ ादेश दिया गया। याचिकाकर्ताओं ने दुखद या प्रति (एसआईसी) के साथ–साथ उपायुक्त के दिनांक 29.09.1975 के आदेश को भी चुनौती दी है, जिसमें उनके समक्ष समीक्षा याचिका को सुनवाई योग्य बताया गया है।

4. नीलामी क्रेता की ओर से पेश श्री गोपाल, जो इन आदेशों से व्यथित हैं, आग्रह करते हैं कि उत्तरदाताओं को भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के प्रावधानों के तहत उपायुक्त से हस्तक्षेप की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है। इस न्यायालय द्वारा जी.डी. नावरेकर बनाम. मैसूर राजस्व अपीलीय न्यायाधिकरण और

अन्य (1973 (1) एमएलजे 331) के मामले में धारा 177 के तहत एक राजस्व प्राधिकारी द्वारा स्वप्रेरणा शक्ति के प्रयोग के सवाल पर इसके तौर–तरीकों के विशेष संदर्भ में कानून तय किया है, यह कहता है:

"यह बताने के लिए पर्याप्त है कि शक्ति का प्रयोग न्याय के हित में और ऐसी शर्तों के अधीन किया जाना चाहिए जिन्हें प्राधिकरण उचित समझे और यह याचिकाकर्ता को सहायक आयुक्त से इस मुद्दे को उठाने के लिए कहने का अधिकार नहीं देता है।"

5. इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त निर्णय में यह बताया गया था कि किसी को भी कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के तहत अपनी स्वप्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उपायुक्त को आवेदन करने का अधिकार नहीं है। इस मामले में 9.6.1975 को उपायुक्त द्वारा पुनर्विलोकन आवेदन का निपटारा गलत कारणों से भी हो सकता है, जैसा कि याचिकाकर्ता के लिए श्री गोपाल ने बताया था, मुझे ऐसा लगता है कि अंतिम होने के बाद अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के तहत कार्य करने वाले उपायुक्त द्वारा स्वप्रेरणा शक्तियों के प्रयोग की मांग करने वाले उत्तरदाताओं द्वारा किए गए आवेदन को समर्थन देना गलत है। इसलिए, मुझे ऐसा लगता है कि इस संक्षिप्त आधार पर रिट याचिका सफल होनी चाहिए और इसलिए मैं इस रिट याचिका को स्वीकार करता हूं और अपीलीय न्यायाधिकरण और अनुलग्नक–सी, ई और एफ के उपायुक्त के आदेश को रद्द करता हूं। कोई परिव्यय नहीं।" (जोर दिया गया)

25. इस निर्णय को अपीलकर्ताओं द्वारा उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष रिट अपील के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसे हालांकि, 8 दिसंबर, 1989 के आदेश द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था, इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"आदेश

कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है। इसलिए, यह अपील खारिज की जाती है।"

इस अपील की अस्वीकृति के साथ, अधिनियम की धारा 177 के तहत आवेदन की वैधता का मुद्दा भी अपीलकर्ताओं के खिलाफ अंतिम हो गया।

26. इन सभी कार्यवाहियों के बाद, अपीलकर्ताओं ने दावणगेरे में सिविल जज (सीनियर डिवीजन), ओ.एस. के समक्ष स्वामित्व एवं कब्जे की घोषणा हेतु एक सिविल मुकदमे क्रमांक 27/90 का सहारा लिया। मुकदमे में, मुख्य मुद्दा यह था कि नीलामी बिक्री की पुष्टि करने वाले सक्षम प्राधिकारी के आदेश के अभाव में और उत्तरदाताओं के पक्ष में नए बिक्री प्रमाण पत्र जारी किए बिना, उत्तरदाताओं या उनके उस मामले के पूर्ववर्ती ने वाद अनुसूची संपत्ति पर कोई अधिकार, हक या हित या जो भी हो हासिल नहीं किया था। इसलिए, बिक्री की पुष्टि के नए आदेश के अभाव में प्रतिवादियों के पूर्ववर्ती को दी गई वाद संपत्ति का कब्जा बहाल करना आवश्यक था। हालाँकि यह तर्क पहली नज़र में आकर्षक था, लेकिन इस पर न केवल ट्रायल कोर्ट, बल्कि उच्च न्यायालय का भी गहरा ध्यान गया, जैसा कि आक्षेपित निर्णय के कंडिका 20 और 21 के विश्लेषण से देखा जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"20. स्वीकृत है कि वर्तमान मामले में, दिनांक 3.2.1966 को दोषी द्वारा दायर आवेदन पर विचार किए बिना, उपायुक्त ने उच्चतम बोली लगाने वाले अर्थात् प्रतिवादी के पिता स्वर्गीय श्री बेलेकरप्पा सहायक आयुक्त द्वारा की गई सिफारिश पर 7.1.1966 को अचल संपत्ति की नीलामी बिक्री की पुष्टि की थी। नीलामी उपायुक्त की इस कार्रवाई को मैसूर राजस्व अपीलीय न्यायाधिकरण ने अपील क्रमांक 486/1967 (एलआर) में वादी के पिता द्वारा दायर अपील में अपवाद माना था और अधिकरण ने अपने आदेश से उपायुक्त द्वारा बिक्री की पुष्टि के आदेश दिनांक 3.6.1966 को रद्द कर दिया था। और वादी के पिता द्वारा दायर आवेदन पर विचार करने के बाद विधि अनुसार नए आदेश पारित करने के लिए मामले को उपायुक्त को प्रत्यावर्तित कर दिया था। ऐसे प्रत्यावर्तित करने पर चूंकि वादी के पिता सुनवाई के लिए निर्धारित तिथि पर उपायुक्त के समक्ष उपस्थित नहीं हुए, इसलिए उपायुक्त ने अभियोजन के अभाव में आवेदन को खारिज कर दिया। इस प्रकार पारित आदेश इस न्यायालय द्वारा W.P.No.1810/1971 और W.A. No.152/1973

में दिए गए आदेश के मद्देनजर अंतिम रूप तक पहुंच गया । इन सभी कार्यवाहियों के निराकरण के बाद भी उपायुक्त ने बिक्री की पुष्टि हेतु कोई नया आदेश पारित नहीं किया। उन्होंने अपील क्रमांक 486/1967 (एलआर) दिनांक 27.9.1967 में किए गए मैसूर राजस्व अपीलीय अधिकरण द्वारा पारित प्रतिप्रेषण आदेश के अनुसार बिक्री की और आगे नया बिक्री प्रमाण पत्र जारी नहीं किया है। ये तथ्यात्मक पहलू, जिन पर अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने विवाद नहीं किया है, यह प्रदर्शित करते है कि प्रतिवादियों के पास उपायुक्त द्वारा पारित बिक्री की पुष्टि के आदेश के अनुसार वाद अनुसूची संपत्ति का कब्जा है, जिसे राजस्व अपीलीय अधिकरण द्वारा अपास्त किया गया था।

21. वादी के पिता द्वारा शुरू की गई अन्य कार्यवाही के तहत अधिनियम की धारा 177 के अंतर्गत एक आवेदन दायर करके बिक्री को रद्द करने के लिए उपायुक्त से संपर्क करना है। हालाँकि, शुरुआत में उपायुक्त ने आवेदन को उनके समक्ष विचारणीय नहीं होने के कारण खारिज कर दिया था, लेकिन अपने आदेश के पुनर्विलोकन के लिए दायर एक आवेदन पर, उन्होंने अपने आदेश में यह देखते हुए आवेदन पर विचार किया था कि दोषी द्वारा अधिनियम की धारा 177 के प्रावधान के तहत स्वप्रेरणा शक्तियों का आरंभ करने के लिए प्रस्तुत आवेदन विचारणीय है। स्वर्गीय श्री बेलेकेरप्पा के कानूनी प्रतिनिधियों – प्रतिवादियों द्वारा राजस्व अपीलीय अधिकरण के समक्ष कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 56 के तहत दायर संशोधन याचिका क्रमांक 304/1973 में इस आदेश की सत्यता या अन्यथा पर सवाल उठाया गया था। अधिकरण ने अपने आदेश दिनांक 30.1.1981 द्वारा माना कि उपायुक्त द्वारा बिक्री को रद्द करने के लिए दोषी द्वारा प्रस्तुत एक आवेदन पर अधिनियम की धारा 177 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करना उचित था। और इसलिए, पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया और उपायुक्त को अधिनियम की धारा 177 के अंतर्गत वादी के पिता द्वारा दायर याचिका/आवेदन पर विधि के अनुसार विचार करने का निर्देश दिया है। ***इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू.पी. क्रमांक 14012/1981 में विषय–वस्तु इस आदेश की सत्यता या अन्यथा था। और इस न्यायालय ने याचिका को स्वीकार करते हुए और पुनरीक्षण याचिका क्रमांक 304/1973 में कर्नाटक अपीलीय अधिकरण द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हुए इस आशय की टिप्पणी की है कि 'भूमि, वसूली के लिए इस आखिरी लड़ाई में उठाया गया मुद्दा कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 177 के तहत अपनी स्वप्रेरणा शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उपायुक्त को नीलामी बिक्री को रद्द करने के लिए किए गए एक आवेदन की प्रचलनशीलता का है, हालांकि नीलामी बिक्री की पुष्टि लंबे समय से की जा रही है।'***

विद्वान एकल न्यायाधीश का यह अवलोकन है, जिसकी पुष्टि डब्ल्यू.ए. क्रमांक 2176/1989 में की गई है, जिसने विद्वान विचारण न्यायाधीश के दिमाग पर यह विचार करने के लिए दबाव डाला है कि मुकदमा प्रांग न्याय के सिद्धांतों से प्रभावित है। (जोर दिया गया)

27. जैसा कि रिट याचिका क्रमांक 14102/1981 दिनांक 31 जुलाई, 1989 में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के निर्णय से देखा गया है, जिसे इस निर्णय के पहले भाग (पैराग्राफ 24) में पूर्णतः पुन: प्रस्तुत किया गया है, उच्च न्यायालय के समक्ष पूरा मुद्दा नीलामी बिक्री की पुष्टि के संबंध में और उत्तरदाताओं के पूर्ववर्ती के पक्ष में जारी बिक्री प्रमाण पत्र, एक ही भूमि के संबंध में समान पक्षों के बीच विषय–वस्तु था जिसमें वाद कारण भी शामिल था। उस निष्कर्ष पर, विचारण न्यायालय के साथ–साथ उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को स्वामित्व और कब्जे की घोषणा के लिए दायर किए गए वाद को प्रांग न्याय के सिद्धांतों से प्रभावित होने के कारण निरस्त कर दिया, जैसा कि आलोच्य निर्णय की कंडिका 31 और 32 में की गयी चर्चा से समझा जा सकता है जिसका उद्धरण इस निर्णय की कंडिका 19 में दिया गया है। हम विचारण न्यायालय द्वारा किये गये तथ्यों के विश्लेषण और निकाले गए निष्कर्ष तथा उच्च न्यायालय द्वारा की गयी पुष्टि से पूरी तरह सहमत हैं।

28. इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णयों के संदर्भ में स्थापित विधिक स्थिति को लागू किया है जैसा कि उच्च न्यायालय ने आलोच्य निर्णय में

पाया था। व्य.प्र.सं. की धारा 11 में निहित प्रांग न्याय का सिद्धांत "Nemo Debet Bis Vexari Pro Una Et Eadem Causa" सुक्ति पर आधारित है। नागभूषणअम्मल बनाम सी. चंडिकेश्वरलिंगम के मामले में हाल ही के एक फैसले में इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"15. 'रेस ज्यूडिकाटा' का शाब्दिक अर्थ है 'निर्णित वस्तु' या 'एक मुद्दा जिसे न्यायिक निर्णय' द्वारा निश्चित रूप से सुलझाया गया है। यह सिद्धांत एक ही मुद्दे को एक बार फिर से विचारण के लिए एक बाधा के रूप में कार्य करता है। इसका उद्देश्य कार्यवाहियों की बहुलता को रोकना है और एक मुद्दे को अंतिम रूप देना है, जो सीधे और महत्वपूर्ण रूप से समान पक्षकारों या उनके संबंधित लोगों के बीच पूर्व मुकदमे में उत्पन्न हुआ था और निर्णित किया गया था और अंतिम हो गया है, ताकि पक्षकारों को दो बार परेशान न होना पड़े; कष्टप्रद मुकदमेबाजी समाप्त हो जाती है और अदालत का बहुमूल्य समय बच जाता है। (सुलोचना अम्मा बनाम नारायणन नायर देखें)

16. जसवन्त सिंह बनाम निष्क्रांत संपत्ति के संरक्षक में इस न्यायालय ने यह निर्धारित करने के लिए एक परीक्षण निर्धारित किया है कि क्या बाद का मुकदमा प्रांग न्याय द्वारा वर्जित किया गया है: (एससीसी पृष्ठ 657, पैरा 14)

'14. ...प्रांग न्याय का बचाव को सफल हो सके, इसके लिए यह दर्शित करना आवश्यक है कि न केवल कार्रवाई का कारण वही था बल्कि यह भी कि वादी को अनुतोष प्राप्त करने का अवसर मिला था जो वह पश्चातवर्ती कार्यवाही में चाह रहा है।' परीक्षण यह है कि क्या बाद के मुकदमे या कार्यवाही में दावा वास्तव में उसी वाद कारण पर आधारित है जो पिछले मुकदमे या कार्यवाही की नींव थी।

17. अभिव्यक्ति 'वाद कारण' की व्याख्या इस न्यायालय द्वारा कुंजन नायर शिवरामन नायर बनाम नारायणन नायर में पैरा 16 में की गई। उद्धृत करने के लिए: (एससीसी पृष्ठ 286)

'16. अभिव्यक्ति 'वाद कारण' ने न्यायिक रूप से तय अर्थ प्राप्त कर लिया है। सीमित अर्थ में, वाद कारण का अर्थ उन परिस्थितियों से है जो कार्रवाई के अधिकार या तत्काल अवसर का अतिक्रमण करती हैं। व्यापक अर्थ में, इसका मतलब मुकदमे के प्रचलन के लिए आवश्यक शर्तें हैं, जिसमें न केवल अधिकार का अतिक्रमण शामिल है, बल्कि स्वयं अधिकार के साथ जुड़ा हुआ अतिक्रमण भी शामिल है। समग्र रूप से अभिव्यक्ति का मतलब हर उस तथ्य से है जिसे अदालत के फैसले पर अपने अधिकार का समर्थन करने के लिए वादी को साबित करना जरूरी होगा तथा प्रत्येक तथ्य जिसे अस्वीकार करने का अधिकार प्रतिवादी को है। प्रत्येक तथ्य जिसे साबित किया जाना आवश्यक है, जो कि साक्ष्य के प्रत्येक टुकड़े से अलग है जो प्रत्येक तथ्य को साबित करने के लिए आवश्यक है, 'वाद कारण' में सम्मिलित है।

18. हैल्सबरी के इंग्लैंड के कानून (चौथे संस्करण) में, इस अभिव्यक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

"वाद कारण" को केवल एक तथ्यात्मक स्थिति के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका अस्तित्व एक व्यक्ति को न्यायालय से दूसरे व्यक्ति के खिलाफ उपाय प्राप्त करने का अधिकार देता है। प्राचीन काल से ही माना जाता रहा है कि इस वाक्यांश में हर उस तथ्य को शामिल किया गया है जो वादी को सफल होने का अधिकार देने के लिए साबित होने योग्य है, और हर उस तथ्य को शामिल करता है जिसका विरोध करने का प्रतिवादी को अधिकार होगा। "वाद कारण" का अर्थ प्रतिवादी की ओर से उस विशेष कार्य से भी लिया गया है जो वादी को उसकी शिकायत का कारण देता है, या कार्यवाही को स्थापित करने वाली शिकायत की विषय–वस्तु देता है, न कि केवल वाद का तकनीकी कारण।"

29. प्रांग न्याय का सिद्धांत वर्तमान चार पहलूआें में लागू होता है जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से अभिनिर्धारित किया गया है। आैर उच्च न्यायालय द्वारा आलोच्य निर्णय में इसकी पुष्टि की गई है, विशेष रूप से, पैराग्राफ 31 और 32 में, जिसे कंडिका 19 में पुन: प्रस्तुत किया गया है।

30. तदनुसार, हम अपील के अंतर्गत निर्णय और आदेशों की पुष्टि करते हैं और इन अपीलों को सारहीन होने से खारिज करते हैं।

31. तदनुसार, ये अपीलें परिव्यय सहित खारिज की जाती हैं।

... ... .सीजेआई. (दीपक मिश्रा)
... ...जे. (ए.एम. खानविलकर)
... ...जे. (डॉ. डी.वाई. चंद्रचूड़)
नई दिल्ली; 6 मार्च 2018.

1. 1982 (1) केएलजे 137
2. ए.आइ.आर 1999 एससी 3750
3. ए.आइ.आर 1980 केरला 236
4. 2000 एआइआर एससीडब्ल्यू 2432
5. ए.आइ.आर 1986 एससी 391
6. ए.आइ.आर 1998 एससी 2046
7. ए.आइ.आर 1965 एससी 1153
8. (2016) 4 एससीसी 434
9. ब्लैक लॉ डिक्शनरी 8 इडीएन 1336–37
10. (1994) 2 एससीसी 14
11. (1985) 3 एससीसी 648
12. (2004) 3 एससीसी 277